International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 2; Issue 5; September 2017; Page No. 835-846

‘अनुदात्तं पदमेकवर्जम्’ सूत्र पर कैयट, नागेश एवं हरदत्त का समीक्षात्मक विमर्श

मनोज आर्य
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत।

प्रस्तावना

सामान्य सूत्रार्थ

जहाँ पद में अन्य स्वर उदात्त या स्वरित का विधान किया जाता है, वहाँ उदात्त या स्वरित को छोड़कर शेष पद अनुदात हो जाता है।[1] यह स्वरविधिविषयक परिभाषा सूत्र है।[2] परिभाषात्वेन इसकी उपस्थिति सभी स्वरविषयक सूत्रों में होती है।

सूत्रगत ‘पदम्’ शब्द विमर्श

सूत्रगत ‘पदम्’ शब्द में व्याख्यान की दृष्टि से दो पक्ष सम्भव हो सकते हैं- जातिपक्ष एवं व्यक्तिपक्ष। ‘पदम्’ शब्द में जातिपक्ष मानने पर एकत्व अविवक्षित होता है तथा व्यक्तिपक्ष मानने पर एकत्व की विवक्षा होती है। एकत्व की अविवक्षा एवं विवक्षा के कारण प्रकृत सूत्र के अर्थ में दोष एवं गुण की प्रसक्ति होने लगती है। जिसका विवेचन निम्न है-

‘पदम्’ शब्द में जातिपक्ष मानने पर दोष

पूर्वपक्षी के अनुसार ‘पदम्’ यह जाति में एकवचन का प्रयोग है।[3] तदनुसार जैसे- ‘ग्रहं सम्मार्ष्टि’ यहाँ ग्रहार्थ के संस्कार्य होने से प्राधान्य के कारण संख्या की अविवक्षा है, वैसे ही ‘पदम्’ यहाँ भी पद के संस्कार्य होने से प्राधान्य के कारण संख्या (एकत्व) की अविवक्षा है। इस पक्ष में सूत्रार्थ निम्न होगा- वाक्य में एक पद को छोड़कर अन्य पद अनुदात्त हो जाते हैं।[4]

इस प्रकार सूत्र की प्रवृत्ति का क्षेत्र (एक) पद न होकर वाक्य होने से अनिष्टार्थ की प्रसक्ति होने लगती है। यद्यपि अनुदात्तादि के अच् में परिभाषितत्व होने से पद के साथ सामानाधिकरण्य सम्भव नहीं है तथापि कैयट ने अनुदात्त शब्द को लौकिक मानकर समानाधिकरण्य सिद्ध किया है। तदनुसार इस पक्ष में अनुदात्त शब्द को लौकिक माना जाता है[5] तथा लोक में उदात्त पद है, अनुदात्त पद है ऐसा व्यवहार होता है।[6] अनुदात्त गुण के योग से पद को भी अनुदात्त कह दिया जाता है। यद्यपि उदात्त, अनुदात्त आदि अचों के धर्म है तथापि तत्साहचर्य से (अचों के साहचर्य से) व्यञ्जन भी अनुदात्त, उदात्त आदि गुण वाले कहे जाते हैं।

इस प्रकार अञ्झलसमुदायरूप पद का भी अनुदात्त गुण के योग से अनुदात्त के साथ गुणगुणिरूप अभेदोपचार मानकर (अनुदात्तं पदम्) इस रूप में सामानाधिकरण्य से निर्देश उपपन्न हो जाता है।

‘एकवर्जम्’ शब्द में भी एक शब्द के द्वारा प्रत्यासत्ति न्याय[7] से पद का ही ग्रहण होता है।[8] यह सम्पूर्ण विवेचन पूर्वपक्ष के रूप में कैयट, नागेश, हरदत्तादि ने स्वीकार किया है।

तात्पर्य यह है कि वाक्य में एक पद को छोड़कर अन्य पद अनुदात्त हो जाते हैं। इस प्रकार सूत्र की प्रवृत्ति का क्षेत्र (एक) पद न होकर वाक्य होगा। यह अर्थ ‘एकवर्जम्’ शब्द में एक शब्द के द्वारा प्रत्यासत्ति न्याय से पद का ग्रहण मानने पर तथा ‘अनुदात्तं पदमेकवर्जम्’ में ‘पद’ शब्द को जाति में एकवचन मानने पर निकलता है। इस पक्ष में किस एक पद का वर्जन करना है इसका नियम न होने के कारण सभी पदों का पर्याय से वर्जन प्राप्त होने से स्वरव्यवस्था नहीं बन पायेगी, यह दोष है।

‘पदम्’ शब्द में व्यक्तिपक्ष मानकर दोष का समाधान

पूर्वोक्त दोष का समाधान सूत्रगत ‘पदम्’ शब्द में व्यक्तिनिर्देश मानकर दिया गया है। इस पक्ष में ‘पदम्’ शब्द में व्यक्ति में एकवचन विवक्षित है।[9] तदनुसार सूत्रार्थ निम्न होगा- पद में जिन (अचों) को उदात्त की प्राप्ति है, वे अनुदात्त हो जाते हैं, एक अच् को छोड़कर।[10]

इस प्रकार सूत्र की प्रवृत्ति का क्षेत्र वाक्य न होकर एक पद होता है। कैयट के अनुसार यह अर्थ (‘पदम्’ में व्यक्तिनिर्देश मानकर) ‘पशुना यजेत’ की तरह विवक्षित होता है। अर्थात् जैसे ‘पशुना’ शब्द में व्यक्तिगत एकत्व पशु के गुणीभूत होने पर याग की प्रधानता के कारण विवक्षित होता है, उसी प्रकार ‘पदम्’ में भी पद के अनुवाद से अचों का अनुदात्त विधान होने से (क्योंकि पद का साक्षात् संस्कार्यत्व सम्भव नहीं है) पद के गुणीभूत होने से एवं गुण में संख्या की विवक्षा होने से पद में एकत्व की विवक्षा होती है। एवं च कृत्रिमाकृत्रिमन्याय[11] से पारिभाषिक अनुदात्त शब्द के द्वारा अचों का ही ग्रहण होता है।[12]

‘एकवर्जम्’ इसमें भी एक शब्द से प्रत्यासत्तिन्याय से अच् का ही ग्रहण होगा। क्योंकि यदि ‘एक’ शब्द से पद का ग्रहण मानें तो नियमकारण का अभाव होने से सभी पदों में पर्याय से वर्जनधर्म प्राप्त होने लगेगा, जिससे स्वरव्यवस्था नहीं बन पायेगी। अच् ग्रहण करने पर जिस अच् का स्वर बलवान् होता है, उसी का वर्जन होता है। यह व्यवस्था

(सतिशिष्टनियम से) उपपन्न हो जाती है।

नागेश का मत

नागेश ने भाष्यकार द्वारा उद्धृत पक्ष 'पदे येषामुदात्तप्रसङ्गस्तेऽनुदात्ता भवन्ति एकमचं वर्जयित्वा' में उदात्तग्रहण को स्वरित का भी उपलक्षण माना है।[13] एतदतिरिक्त नागेश ने 'परे तु' कहकर कुछ आचार्यों का मत प्रदर्शित किया है, जो एकत्वविवक्षा कथन के उपयोग को निरर्थक मानते हैं।[14] तदनुसार विवक्षा होने पर पदान्तर में स्वर नहीं होगा, इसलिए जहाँ तक पद की समाप्ति है, वही तक इसकी प्रवृत्ति होती है।[15]

हरदत्त का मत

पदमञ्जरीकार ने 'पदम्' शब्द को एकत्व विवक्षा के लिए स्वीकार किया है। तदनुसार 'पदम्' शब्द भी लक्षणा से तत्स्थ अचों में वर्तमान है, वहाँ अचों के द्वारा पदस्थत्व का व्यभिचार न करने से एकत्व की विवक्षा के लिए ही पद ग्रहण किया गया है।[16]

अज्मात्रवाची अनुदात्त और पद के सामानाधिकरण्य का समाधान

इस प्रकार सामान्यतया सिद्धान्त रूप में सभी टीकाकारों ने 'पदम्' में व्यक्ति निर्देश तथा एकत्व की विवक्षा स्वीकार की है। 'अनुदात्तं पदम्' ऐसा निर्देश मानने पर सामानाधिकरण्य की समस्या उत्पन्न होती है। अर्थात् अज्झल्समुदायरूपी पद का अज्मात्रवाची अनुदात्त शब्द के साथ समानाधिकरण्य कैसे उपपन्न होगा?

इस शंका का समाधान भाष्यकार एवं टीकाकारों ने अभेदोपचार तथा भेदोपचार के माध्यम से दो प्रकार से किया है। तदनुसार अभेदोपचार पक्ष में मतुब्लोप माना जाता है तथा भेदोपचार पक्ष में अर्शादिगण को आकृतिगण मानकर 'अकार' किया जाता है। अर्थात् अनुदात्त शब्द से अच् का ग्रहण होता है किन्तु अर्शाद्यच् करने पर तद्वान् का ग्रहण होने से अनुदात्ताच्क पद भी अनुदात्त होने से, पद के साथ (अनुदात्त का) समानाधिकरण्य हो जायेगा। तद्यथा- तुन्दः, घाटः आदि में होता है।[17]

द्वितीय समाधान मतुब्लोप आश्रयण से अवयव अवयवी में अभेदोपचार मानकर दिया है। अर्थात् अवयव अवयवी में अभेद का व्यवहार करने पर अनुदात्ताच्क पद को भी अनुदात्त कहा जा सकता है। तद्यथा- पुष्पका एषां ते पुष्पका, कालका एषां ते कालकाः।[18] पुष्पकाः तीन बिन्दुओं को कहते हैं[19], उनके योग से अभेदोपचार मानकर बिडाल को भी पुष्पका कह दिया जाता है। यह अभिप्राय है।

अभेद पक्ष 'मतुब्लोप' पर कैयटादि का व्याख्यान

कैयट ने समानाधिकरण्य का भेदपक्ष तथा अभेदपक्ष इन दो दृष्टियों से व्याख्यान किया है। अभेदपक्ष के रूप में उसने मतुब्लोप का आश्रयण किया है। तदनुसार अवयवावयवी के अभेदोपचार से अनुत्पत्तिरूप ही यहाँ (अनुदात्तम् में) मतुब्लोप है[20], न कि 'गुणवचनेभ्यो लुक्' आदि के द्वारा मतुब्लोप; क्योंकि अनुदात्त शब्द का अच् में संज्ञात्वेन विनियोग होने से गुणवचनत्व नहीं हो सकता है।[21] नागेश ने सौत्र मतुब्लोप मानने वाले पक्ष का भी उल्लेख किया है।[22] हरदत्त ने भी अवयवावयवी पक्ष का आश्रयण किया है।

भेद पक्ष में व्याख्यान

इस पक्ष में अर्शादि को आकृतिगण मानकर 'अर्शादिभ्योऽच्'[23] से मत्वर्थीय अकार (अच्) करके तद्वान् का ग्रहण होने से पद के साथ सामानाधिकरण्य हो जायेगा। तद्वान् होने के कारण यह भेदपक्ष है। इस प्रकार कैयट, हरदत्त, नागेश आदि सभी टीकाकारों ने सामानाधिकरण्य के समाधान के लिए मतुब्लोप अथवा मत्वर्थीय अकार को स्वीकार किया है।

प्रकृत सूत्र प्रयोजन विमर्श

'आगमस्य विकारस्य प्रकृतेः प्रत्ययस्य च। पृथक्स्वरनिवृत्त्यर्थमेकवर्जं पदस्वरः।' इस सूत्र का प्रयोजन यह है कि जहाँ आगमादि को पृथक्-पृथक् स्वर प्राप्त हो रहा है, वहाँ सबकी निवृत्ति होकर एक अच् (उदात्त या स्वरित) को छोड़कर शेष (अच्) अनुदात्त हो जायें। अन्यथा प्रकृति-प्रत्यय-आगमादि में भिन्न-भिन्न स्वर की प्राप्ति होने पर अनिष्ट प्रसक्ति होने लग जाती है। तात्पर्य यह है कि पर्यायस्वर और युगपत्स्वर की प्रसक्ति का निषेध करना इस सूत्र का मुख्य प्रयोजन है। तद्यथा-

आगम का उदाहरण

'चत्वारः' इस पद में 'चतेरुरन्' से नित्प्रत्ययान्त होने से चतुर् शब्द आद्युदात्त है तथा 'चतुरनडुहोरामुदात्तः'[24] से 'आम्' को उदात्त होता है। इस प्रकार यहाँ 'चत्वारः' पद में विरोधाभाव होने से उदात्तद्वय की प्रसक्ति होने लगती है।

अनड्वाह

कैयट ने 'अनस्' शब्द को असुन् प्रत्ययान्त मानकर आद्युदात्त माना है[25] तथा अनस् पूर्वक 'वह्' धातु को 'गतिकारकोपपदात् कृत्'[26] से उत्तरपद प्रकृतिस्वर रूप अन्तोदात्त की प्राप्ति होती है। इसी को स्पष्ट करते हुए नागेश ने कहा है कि 'अनड्वाह' में उपपदस्वर तथा आमस्वर का श्रवणप्रसङ्ग होने लगेगा, जो कि अभीष्ट नहीं है।[27] इसी प्रकार अस्थ्ना, गोपायति, कर्त्तव्यम् इत्यादि में भी युगपत्स्वर की प्राप्ति होने लग जाती है। तन्निवृत्त्यर्थ (युगपत्स्वरनिवृत्त्यर्थ) इस सूत्र का प्रणयन किया गया है।

पदमञ्जरीकार का मत

हरदत्त ने 'आगमस्य विकारस्य प्रकृतेः प्रत्ययस्य च। पृथक्स्वरनिवृत्त्यर्थमेकवर्जं पदस्वरः' आदि कारिका में उद्धृत प्रयोजन को उपलक्षण माना है।[28] तदनुसार तत्-तत् लक्षणों से अभिनिर्वृत्त अनेक उदात्त तथा स्वरितों के समावेश की निवृत्ति करना मात्र ही इस सूत्र

(अनुदात्तं पदमेकवर्जम्) का कार्य नहीं है, अपितु जिनका किसी भी सूत्र के द्वारा उदात्त या स्वरित विधान नहीं किया गया है उनको अनुदात्त इसी सूत्र द्वारा सम्भव है। अर्थात् जैसे अनेक अचों वाले प्रत्ययों में तथा अनेक अचों वाली धातुओं में आद्यन्त व्यतिरिक्त (आदि एवं अन्तिम अचों को छोड़कर) शेष अचों का अनुदात्त नियमन इसी सूत्र के अधीन है।[29]

युगपत्स्वरप्राप्ति का ज्ञापक द्वारा निरास

(सूत्रवैयर्थ्य पक्ष) भाष्यादि व्याख्याकारों ने युगपत्स्वर प्रसक्ति रूप दोष के निवारण के लिये सूत्रप्रणयन व्यर्थ माना है, क्योंकि यह कार्य तो ज्ञापक से ही सिद्ध है। तद्यथा- 'तवै चान्तश्च युगपत्'[30] इस सूत्र में युगपत् ग्रहण की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि युगपत् ग्रहण के बिना भी 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' सूत्र से युगपत्स्वर सिद्ध ही है। इस तरह यौगपद्य सिद्ध होने पर पुनः यौगपद्य विधान ज्ञापित करता है कि युगपत्स्वर बिना विधायक लक्षण के प्रवृत्त नहीं होता है।

तात्पर्य यह है कि 'तवै चान्तश्च युगपत्' सूत्र के द्वारा गति से पूर्व वाले पद का प्रकृतिस्वर तथा 'तवै' प्रत्ययान्त का अन्तोदात्तत्व विधान किया जाता है। अतः यह सूत्र युगपत्स्वर प्रवृत्ति करता है। इस प्रकार विरोधाभाव होने से ही बिना युगपत् ग्रहण के युगपत्स्वर सिद्ध ही था, पुनः युगपत्ग्रहण इस बात का ज्ञापक है कि जहाँ युगपत् ग्रहण नहीं है, वहाँ युगपत्स्वर नहीं होता है। इसलिए 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' सूत्र का युगपद्स्वर प्राप्ति रूप दोष की निवृत्ति के लिए प्रणयन करना व्यर्थ है।

पर्यायस्वर प्राप्ति का ज्ञापक द्वारा निरास

सूत्र प्रयोजन के सन्दर्भ में युगपत्स्वर तथा पर्यायस्वर प्रसक्ति निवृत्त्यर्थ सूत्र प्रणयन माना गया है। उसमें युगपत्स्वर प्रसक्ति का ज्ञापक द्वारा निरास करने के पश्चात् पर्यायस्वर प्रसक्ति का भी ज्ञापक द्वारा निरास करके सूत्र का प्रत्याख्यान किया गया है। तदनुसार पर्यायस्वर का निरास निम्नरूपेण है - 'रिक्ते विभाषा'[31] इस सूत्र से आद्युदात्तत्व विकल्प से होता है तथा पक्ष में प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्तत्व होता है। इस प्रकार विरोधाभाव होने से स्वतः ही (अनुदात्तं पदमेकवर्जम्) से पर्यायस्वर सिद्ध है। पुनः विधान (रिक्ते विभाषा) ज्ञापित करता है कि अन्यत्र पर्यायस्वर नहीं होता है।

यदि यह कहा जाये कि उपर्युक्त ज्ञापक केवल उदात्तस्वरविषयक है, स्वरित विषयक नहीं तथापि कोई दोष नहीं है। क्योंकि स्वरित में भी उदात्त धर्म तो होती ही है, तद्विषयक भी ज्ञापक बन जायेगा।[32] कैयट का मानना है कि ज्ञापक उदात्तविशिष्ट को न मानकर उदातश्रुतिमात्रविषयक को मानकर सिद्ध किया गया है, अतः स्वरित का भी उपलक्षण हो जायेगा।[33]

उदात्तश्रुतिविषयक ज्ञापक मानने में दोष

कैयट के अनुसार उदात्त श्रुति के द्वारा स्वरित का अग्रहण यहाँ शास्त्र में युक्त ही है, क्योंकि मुख्य उदात्त अच् के संज्ञियों के ग्रहण की युक्तता होती है।[34] इसीलिए 'उदात्तस्वरितयोर्यणः'[35] इत्यादि में उदात्त और स्वरित का भेद रूप में निर्देश किया गया है। अन्यथा यदि उदात्त के ग्रहण से ही स्वरित भी सिद्ध हो जाता, तो दोनों का ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं थी।

एतदतिरिक्त यदि उदात्त शब्द से स्वरित का भी ग्रहण होने लगेगा तो जहाँ-जहाँ उदात्तविषयक कार्य कहे गये हैं, वही कार्य स्वरित को भी प्राप्त होने लगेगें। जैसे- 'उदीच्यग्रामाच्च बह्वचोऽन्तोदात्ताट्ठञ्'[36] इस सूत्र से 'अन्तोदात्त' पद से अन्तस्वरित का भी ग्रहण होने पर 'शर्कराद्यानम्' इस पद के अन्तस्वरित होने से इससे भी 'ठञ्' प्राप्ति होने लगेगी, जो कि अनिष्ट है। क्योंकि यह सूत्र पठित 'अन्तोदात्तात्' पद का प्रत्युदाहरण है।

एतदतिरिक्त 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः'[37] से कहा हुआ कार्य स्वरित से उत्तर अनुदात्त को भी होने लगेगा। इसलिए उदात्तश्रुतिविषयक ज्ञापक से स्वरित का समावेश करना अयुक्त है। इसी तथ्य का नागेश तथा कैयट आदि के द्वारा भी समर्थन किया गया है। कैयट ने स्वरितविषयक ज्ञापक की युक्तता को पाक्षिक ही स्वीकार किया है।[38] नागेश ने स्पष्ट रूप से स्वरितविषयक ज्ञापक को असंगत कहा है।[39] एतद्विपरीत इस सन्दर्भ में ज्ञापक की युक्तता उदात्तश्रुतिमात्र को मानकर की गयी है। इस प्रकार युगपत्स्वर एवं पर्यायस्वर प्रसक्ति निवृत्त्यर्थ सूत्र प्रणयन व्यर्थ है। वस्तुतः ये एकदेशी समाधान हैं।

सूत्र आरम्भ पक्ष में दोषोपन्यास

प्रस्तुत सूत्र के प्रयोजनों की सिद्धि ज्ञापकों के माध्यम से भी की जा सकती है, किन्तु ज्ञापक से अस्पष्ट एवं सन्दिग्ध प्रतिपत्ति होती है, इसलिए स्पष्ट एवं सन्देह रहित प्रतिपत्ति के लिए सूत्रारम्भ आवश्यक है।

प्रस्तुत सूत्र के आरम्भ करने पर इसको विधि सूत्र माना जाये या परिभाषासूत्र या अधिकारसूत्र अथवा नियमसूत्र आदि विभिन्न पक्षों का टीकाकारों ने गुण-दोष की कसौटी पर कसकर विवेचन किया है। इन सभी पक्षों का विश्लेषण निम्न है।

विधिपक्ष में कैयट एवं नागेश का मत

विधिसूत्र के द्वारा लक्षणान्तर अप्राप्त कार्यों का विधान किया जाता है। इस पक्ष में सूत्र का अर्थ होगा- एक अच् को छोड़कर शिष्ट अचों को अनुदात्त हो जाता है। अतः जिन अचों को उदात्तत्व या स्वरितत्व साक्षात् विहित नहीं है, वहाँ इसको अवकाश मिल जायेगा। किन्तु जहाँ उदात्तत्व या स्वरितत्व किसी लक्षणान्तर से विहित है, वहाँ (अचों के उदात्तत्व या स्वरितत्व का) युगपत्प्राप्ति में भी इसके द्वारा (सावकाश होने से) निवर्तन सम्भव नहीं होगा।[40]

विधिपक्ष में हरदत्त का मत

हरदत्त का कहना है कि जिन अचों को लक्षणान्तर से उदात्त या स्वरित विहित नहीं है, उनमें भी अनुदात्त की पक्ष में प्राप्ति होगी।[41] क्योंकि

किस एक अच् का वर्जन करना है, इसका नियम न होने से पर्याय से सभी अचों में वर्जनता होने लगेगी। एतदतिरिक्त लक्षणान्तर से जिनको उदात्त या स्वरित विहित है, वे एक पद में वर्तमान होने पर अनुदात्त होते हैं, एक अच् को छोड़कर, ऐसा अर्थ उपपन्न होगा।[42] इस स्थिति में 'औपगवत्वम्' आदि में दो प्रत्ययाद्युदात्तत्व होने पर उपर्युक्त अर्थ के अनुसार विधीयमान अनुदात्त किस एक को होगा, यह व्यवस्था नहीं बन पायेगी। एतदतिरिक्त उदात्त, स्वरित, व्यतिरिक्त अचों में भी अनियम प्रसक्ति ही रहेगी।

इस प्रकार पदमञ्जरीकार ने विधिपक्ष में दोनों ही क्षेत्रों (लक्षणान्तर विहित उदात्त, स्वरित अथवा प्रकृतसूत्रविहित) में दोष प्रसक्ति दर्शाई है। जबकि कैयटादि ने सामान्यतया लक्षणान्तर विहित उदात्त, स्वरित के सन्दर्भ में दोष प्रसक्ति प्रदर्शित की है।

विधिपक्ष स्वीकार करने में दोष

इस प्रकार सूत्र में विधिपक्ष मानने पर 'आमलकीजः' आदि उदाहरणों में चार (अचों) को उदात्तत्व की प्राप्ति होने लगेगी, क्योंकि यहाँ उदात्तत्व भिन्न-भिन्न शास्त्रों द्वारा विहित है। यथा- ङीष् को 'प्रत्ययाद्युदात्तत्व'[43], 'गतिकारकोपपदात् कृत्'[44] से कृत्स्वर (ज शब्द का उदात्तत्व) 'दीर्घकाशतुषभ्राष्ट्रवटं जे'[45] से पूर्वपदाद्युदात्तत्व, 'अन्त्यात्पूर्वं बह्वचः'[46] से लकारस्थ अकार का उदात्तत्व इत्यादि में विरोधाभाव होने से युगपत् उदात्तचतुष्ट्य की प्राप्ति होने लगती है तथा शिष्ट (अचों) को अनुदात्तत्व प्राप्त होने लगेगा।

विधिपक्ष में सूत्र अप्राप्तविधान में चरितार्थ होने पर प्राप्तनिवृत्ति में भी व्यापारित नहीं हो सकता[47], ऐसा नागेश का मानना है। एतदतिरिक्त 'एकवर्जम्' पद के द्वारा जिस-जिस को उदात्त या स्वरित विधान किया गया है उस-उस को छोड़कर सूत्र की प्रवृत्ति होती है, ऐसा अर्थ निष्पन्न होने के कारण विप्रतिषेध भी उपपन्न नहीं होता है। अतः चार (अचों) को उदात्तत्वरूप अनिष्ट प्रसक्ति होने लगती है, यह अभिप्राय है।

कैयट का मानना है कि विधिपक्ष मानने पर 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः'[48] से स्वरितत्व भी नहीं हो पायेगा, क्योंकि 'नोदात्तस्वरितोदय०'[49] के द्वारा पक्ष में प्रतिषेध किया गया है।[50] किन्तु नागेश ने कैयट के स्वरितत्वाभावव्युत्पादन रूप पक्ष को चिन्त्य कहा है।[51]

कैयट और नागेश का संश्लेषण

कैयट ने विधिपक्ष मानने पर स्वरितत्वाभावरूप जो पाक्षिक मत दिखलाया है उसका तात्पर्य मात्र इतना है कि 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' के द्वारा अनुदात्त का विधान होने पर उसका श्रवण आवश्यक है। यदि 'आमलकीजः' में मकारस्थ अकार को 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' से स्वरित हो जायेगा, तो शिष्ट का अनुदात्त श्रवण नहीं होने से सूत्र व्यर्थ हो जायेगा। इतना मात्र प्रदर्शन करना ही कैयट का आशय रहा होगा, किन्तु नागेश ने उसको सम्पूर्णता में समझकर चिन्त्य कह दिया है।

विधिपक्ष में विप्रतिषेध की अनुपपत्ति

विधिपक्ष में अनुदात्तत्व का विधान होने पर विप्रतिषेध भी उपपन्न नहीं हो पाता है, क्योंकि 'एकवर्जम्' इस वचन से जिस-जिस को उदात्त या स्वरित विधान किया है, उस-उस को छोड़ देते है। एतदनुसार 'दीर्घकाशतुषभ्राष्ट्रवटं जे'[52] तथा 'अन्त्यात्पूर्वं बह्वचः'[53] आदि सूत्रों में विप्रतिषेध भी उपपन्न नहीं होता है। क्योंकि यहाँ एक पद में ही भिन्न-भिन्न अचों को युगपत् प्राप्ति होती है और नियम यह है कि 'असति खलु सम्भवे विप्रतिषेधो भवति, अस्ति च सम्भवो यदुभयं स्यात्' अर्थात् विधिपक्ष मानने पर सूत्र से उदात्तत्व का प्रतिषेध नहीं किया जा रहा, अपितु अनुदात्तत्व का विधान किया जा रहा है और यदि दोनों को उदात्त सम्भव है तो वह हो जायेगा, शेष को अनुदात्त विधान हो जायेगा। विप्रतिषेध वहीं उपपन्न होता है, जहाँ एक ही अच् को दोनों सूत्रों की प्राप्ति हो रही हो। प्रकृत में ऐसी स्थिति नहीं है। अतः विप्रतिषेधानुपपत्ति रहेगी।

कैयट, नागेश एवं हरदत्त का संश्लेषण

तीनों टीकाकारों ने यद्यपि विधि पक्ष की अयुक्तता ही स्थापित की है, तथापि प्रक्रिया की दृष्टि से हरदत्त का दोनों (कैयट एवं नागेश) से भिन्न चिन्तन है। कैयट एवं नागेश ने सामान्यतया लक्षणान्तर विहित स्वरित या उदात्तत्व के सन्दर्भ में दोष प्रसक्ति दर्शाई है।[54] जैसे- 'आमलकीजः' आदि में युगपत् उदात्तचतुष्ट्य रूप दोष। एतद्विपरीत हरदत्त ने (लक्षणान्तर विहित तथा प्रकृतसूत्रविहित) दोनों ही अर्थों में दोष प्रदर्शन किया है।

वस्तुतः टीकाकारों के चिन्तन में यह भेद 'एकवर्जम्' पद की भिन्न-भिन्न रूपेण व्याख्या के कारण उपस्थित होता है। कैयट एवं नागेश ने 'एकवर्जम्' पदगत 'एक' शब्द को संख्या में नियत न मानकर शास्त्रान्तर विहित उदात्त या स्वरित का उपलक्षण माना है।[55] अतः उनके अनुसार एक पद में चार उदात्त भी यदि शास्त्रान्तर विहित है, तो उनको छोड़कर (न कि एक को छोड़कर) परिशिष्ट अनुदात्त होता है, ऐसा अर्थ ('अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' सूत्र को विधि पक्ष मानने पर) निकलता है।

एतद्विपरीत पदमञ्जरी के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि हरदत्त ने 'एकवर्जम् पदगत 'एक' शब्द को संख्या में नियत माना है।[56] अतः वे 'औपगवत्वम्' आदि में दो प्रत्ययाद्युदात्तत्व होने पर भी एक प्रत्ययाद्युदात्तत्व को छोड़कर शेष को अनुदात्त करते हैं।[57] एतदतिरिक्त नागेश का कहना है कि अप्राप्तविधान में चरितार्थ होने के कारण यह सूत्र (उदात्तचतुष्ट्य की) प्राप्तनिवृत्ति में व्यापारित नहीं हो सकता।[58]

इस प्रकार 'एक' पद के व्याख्याभेद के कारण कैयट एवं नागेश के विधिपक्ष में युगपत् उदात्तचतुष्ट्य प्रसक्ति की निवृत्ति न होना समस्या है, किन्तु हरदत्त के पक्ष में उदात्तचतुष्ट्य में किस एक का वर्जन करके शेष को अनुदात्त किया जाए तथा लक्षणान्तरविहित उदात्त, स्वरित व्यतिरिक्त पद के अचों में भी किस एक अच् का वर्जन करके शेष को अनुदात्त किया जाये, यह समस्या है।

वस्तुतः सभी टीकाकारों ने भिन्न-भिन्न प्रक्रियाओं से विधिपक्ष की अयुक्तता ही स्थापित की है।

निषेध पक्ष

कैयट ने विप्रतिषेधानुपपत्ति प्रसङ्ग में 'नोदात्तं पदमेकवर्जम्' कहकर निषेध पक्ष भी उठाया है।[59] उनका मानना है कि यदि 'नोदात्तं पदमेकवर्जम्' ऐसा सूत्रन्यास करके उदात्तत्व का प्रतिषेध कहेंगे, तो एक अच् को छोड़कर शिष्ट अचों को उदात्त नहीं हो सकता है।

नागेश के अनुसार इस पक्ष में एक शब्द एकत्व संख्या का वाचक है।[60] इस प्रकार विप्रतिषेध उपपन्न होने पर युगपत्स्वर प्राप्ति रूप दोष नहीं होगा। क्योंकि एक अच् को छोड़कर अन्य सभी (अचों) के उदात्तत्व का निषेध हो जायेगा। 'तवै चान्तश्च युगपत्' इत्यादि में तो युगपत्ग्रहण सामर्थ्य से समावेश हो जायेगा।[61]

कैयट उद्भावित नियमपक्ष

एतदरिक्त कैयट ने 'नानेनोदात्तत्वं क्रियते'[62] ऐसा भाष्यस्थ पाठभेद मानकर 'उदात्तं पदमेकम्' ऐसा सूत्रन्यास भी स्वीकार किया है। तदनुसार यदि 'उदात्तं पदमेकम्' ऐसा सूत्रन्यास करते हैं, तो उदात्त (वर्ण) पद में एक ही होता है, ऐसा नियमन करके उदात्तत्व करने पर भी दोष नहीं है।[63] यह कैयट उद्भावित नियम पक्ष है।

पदमञ्जरीगत नियम पक्ष एवं तद्गत दोष

कैयट एवं नागेश ने इस सूत्र का भिन्न रूप में नियमसूत्र की दृष्टि से विवेचन किया है, जैसा कि उपरिगत विवेचन किया गया है। उन्होंने विधिसूत्र मानकर ही दोष प्रसक्ति दर्शायी है।[64] पदमञ्जरीकार ने भिन्न रूप में नियम पक्ष पर विचार किया है। तदनुसार नियम पक्ष में अर्थ होगा- एक अच् को छोड़कर, परिशिष्ट (अच्) अनुदात्त ही होते हैं।[65] इस पक्ष में जिन अचों को लक्षणान्तर से उदात्त या स्वरित विधान किया गया है, वहाँ अनियम का प्रसङ्ग न होने से, तद्व्यतिरिक्त विषय में इसकी प्रवृत्ति होगी। तद्व्यतिरिक्त विषय में अनियम प्रसक्ति इसलिए है क्योंकि अस्वरक अच् का उच्चारण सम्भव नहीं है।[66] 'एकवर्जम्' के द्वारा जिस-जिस को उदात्त, स्वरित का विधान है उस-उस को छोड़ दिया जाता है।

इस पक्ष में 'चत्वारः' आदि में आगमादि को पृथक्-पृथक् स्वर प्राप्त होने लगेगा। एतदतिरिक्त 'आमलकीजः' इत्यादि में ङीष् को 'प्रत्ययाद्युदात्तत्व', 'गतिकारकोपपदात्कृत्'[67] से 'ज' शब्द को उदात्तत्व, 'दीर्घकाशतुष.'[68] से पूर्वपदाद्युदात्तत्व तथा 'अन्त्यात्पूर्व बह्वचः'[69] से लकार को उदात्तत्व होकर युगपत् उदात्तचतुष्ट्य प्रसक्ति रूप दोष प्राप्त होने लगेगा।

पदमञ्जरीकार ने सूत्र में 'पदमेकवर्जम्' ग्रहण से प्रकृत सूत्र के नियमत्व पक्ष का खण्डन किया है। तदनुसार यदि जिस-जिस को उदात्त या स्वरित का विधान है उस-उस को छोड़कर, परिशिष्ट अनुदात्त ही होता है, ऐसा अर्थ करते हैं तो 'पदम्' तथा 'एकवर्जम्' ये दोनों पद ही व्यर्थ है। तात्पर्य यह है कि सामान्य रूप से 'अचोऽनुदात्ता' इतना सूत्र मानने पर भी प्रत्ययाद्युदात्तत्व आदि विषयों में उनके (प्रत्ययाद्युदात्तत्वादि) द्वारा बाधित होने पर भी अनुदात्तत्व नहीं होगा। तदर्थ 'पदमेकवर्जम्' ग्रहण की आवश्यकता नहीं है। अतः 'पदमेकवर्जम्' ग्रहण से सिद्ध होता है कि यह नियमसूत्र नहीं है।

कैयट एवं हरदत्त विवेचित नियमपक्ष का संश्लेषण

वस्तुतः कैयट एवं हरदत्त विवेचित नियमपक्ष में यह भेद है कि कैयट ने भाष्यस्थ पाठभेद मानकर 'उदात्तं पदमेकम्' ऐसा सूत्रस्वरूप माना है, जबकि पदमञ्जरीकार ने 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' का ही नियमत्वेन व्याख्यान किया है। इसलिए पदमञ्जरीकार के पक्ष में दोषप्रसक्ति होती है, किन्तु कैयट के पक्ष में नहीं होती है।[70] यह अभिप्राय है।

अधिकार पक्ष

अधिकार सूत्र उन्हें कहते हैं, जिनका क्षेत्र विस्तृत होता है तथा उनका उपयोग एक सीमा तक उत्तरवर्ती लगभग सभी सूत्रों में होता है। इसी बात को भाष्यकार ने भी कहा है- 'अधिकारः प्रतियोगं तस्यानिर्देशार्थ इति योगे योग उपतिष्ठते।'[71]

अधिकारपक्ष में विप्रतिषेध की उपपन्नता

(गुण) यदि 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' को अधिकार सूत्र मानते हैं, तो यह 'दीर्घकाश. जे' सूत्र में भी उपस्थित होता है तथा 'अन्त्यात्पूर्वं बह्वचः' में भी। इस प्रकार दोनों सूत्रों में उपस्थिति तथा अर्थानुशीलन से विप्रतिषेध उपपन्न हो जाता है, क्योंकि अधिकार सूत्र स्वयं में स्वतन्त्र नहीं होता है, अपितु उत्तरवर्ती सूत्रों के साथ एकवाक्यता सम्पन्न करके जिसका स्वर विधान किया जाता है उसको छोड़कर, शिष्टों का अनुदात्तत्व करता है।

इस प्रकार दोनों योगों में उपस्थिति होने पर किस एक का अनुदात्तत्व में वर्जन होगा तथा किसका नहीं होगा। (अर्थात् 'दीर्घकाशतुषभ्राष्ट्रवटं जे' का स्वर होगा या 'अन्त्यात्पूर्वं बह्वचः' का) इस प्रकार विप्रतिषेध उपपन्न हो जाता है। 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्'[72] के नियमानुसार परत्व होने से परवाले से वर्ज्यमानता हो जायेगी। कैयट ने अधिकारपक्षरूपी व्याख्यान को आचार्यदेशीय कहकर पक्षान्तर रूप में माना है।[73]

अधिकार पक्ष में दोष

अधिकार सूत्रों का क्षेत्र विस्तृत होने पर भी असीम नहीं होता है, इसलिए उनका अनुवर्तन एक निर्धारित क्षेत्र तक ही होता है। अतः 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' सूत्र भी षष्ठाध्याय तक ही जा सकता है। इसलिए षष्ठाध्यायस्थ स्वर का तो संग्रहण हो जायेगा, किन्तु सप्तमाध्यायस्थ स्वरसूत्रों का तथा अन्य सूत्रों का संग्रहण न होने से यह पक्ष भी अव्याप्ति दोषयुक्त ही है।[74] तद्यथा- 'आद्युदात्तश्च'[75] 'समानोदरे शयित ओ चोदात्तः'[76] तथा 'अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः'[77] इत्यादि प्रदेशान्तरवर्ती स्वरविधियों में इसकी उपस्थिति न होने से उनमें परिशिष्ट

को अनुदात्तत्व नहीं होगा तथा 'एकवर्जम्' भी व्यर्थ हो जायेगा, यह दोष है।

नागेश का कहना है कि षष्ठाध्यायस्थ में भी 'सहस्य सः संज्ञायाम्'[78] आदि का संग्रह नहीं हो पायेगा, क्योंकि सूत्र के अधिकारत्वेन होने पर भी स्वरप्रकरण में ही उपस्थापन हो पायेगा, तद्बहिर्भूत 'सहस्य सः' आदि में नहीं।[79]

परिभाषापक्ष

'परितो व्यापृतां भाषां परिभाषा प्रचक्षते' के अनुसार परिभाषा सूत्र एकदेशस्थित होकर भी देहलीदीपकन्याय[80] से सम्पूर्ण शास्त्र को भासित करते हैं।

महाभाष्य में परिभाषापक्ष का भी दो तरह से उपस्थापन किया गया है। प्रथम प्रकार से सूत्रन्यास को बदलकर 'एकाननुदात्तं पदम्' इस रूप में रखकर स्थापना की गयी है तथा द्वितीय प्रकार यथान्यास का ही परिभाषारूपेण व्याख्यान है।

न्यासान्तर में परिभाषापक्ष

न्यासान्तर में 'एकाननुदात्तं पदम्' इस रूप में परिभाषा करनी चाहिए। यहाँ 'न उदात्तः = अनुदात्तः, न अनुदात्तः = अननुदात्तः, एकः अननुदात्तोऽस्मिंस्तदिदमेकाननुदात्तम्'[81] इस प्रकार नञ्द्वय के द्वारा निषेध रूप उदात्त की भावदृढ़ता प्रदर्शित की गयी है। तदनुसार इस पक्ष में अर्थ होगा कि जिस अच् को स्वर का विधान किया गया है, वही अविद्यमानोदात्त (अनुदात्त) नहीं होगा, शिष्ट अविद्यमानोदात्त (अनुदात्त) हो जायेगें। इस प्रकार उदात्त निषेध सम्पन्न हो जायेगा।

इस प्रकार जहाँ एक (अच्) को स्वर विधान किया गया है, वहाँ इस परिभाषा की उपस्थिति होने से 'दीर्घकाशतुषभ्राष्ट्रवटं जे'[82] एवं 'अन्त्यात्पूर्व बह्वचः'[83] दोनों में उपस्थित होकर यह विप्रतिषेध की उपपत्ति करा देगी।

नागेश ने 'एकाननुदात्तं पदम्' इस निषेधमुख परिभाषा के स्थान पर 'एकोदात्तं पदम्' इस विधिमुख परिभाषा को भी स्वीकार किया है।[84] तदनुसार अर्थ होगा कि 'पद में एक ही उदात्त होता है, शिष्ट उदात्त रहित होते हैं।' दोनों में भेद केवल इतना है कि पूर्व में नञ्द्वय के द्वारा भावदृढ़ता स्थापित की गयी है तथा यहाँ भावदृढ़ता नहीं है। तात्पर्य दोनों का समान ही है।

यथान्यास में परिभाषापक्ष

कैयट के अनुसार यदि न्यासान्तर में भी परिभाषात्व का आश्रयण किया जाता है तो यथान्यास में ही परिभाषापक्ष मानने पर भी कोई दोष नहीं है। इस पक्ष में यह स्वरविधिलिङ्गा परिभाषा है। अर्थात् जहाँ-जहाँ स्वर का विधान किया जायेगा, वहाँ-वहाँ इसकी उपस्थिति हो जायेगी। एतदर्थम् यथान्यास में 'कार्यकालं संज्ञापरिभाषम्' रूपी परिभाषा पक्ष को स्वीकार किया गया है। तदनुसार 'दीर्घकाशतुषभ्राष्ट्रवटं जे'[85] तथा 'अन्त्यात्पूर्व बह्वचः'[86] दोनों जगह कार्य उपस्थित होने से यह (अनुदात्तं पदमेकवर्जम्) परिभाषा सूत्र उपस्थित होता है। दोनों के साथ इसकी एकवाक्यता होकर अर्थनिष्पत्ति होती है।

इस प्रकार (उदात्त या स्वरित विधि में इसकी उपस्थिति होने के कारण) दोनों लक्षणों (सूत्रों) में उपस्थिति से विप्रतिषेध की उपपन्नता होने पर परत्व के द्वारा इष्ट सिद्ध हो जायेगा। कैयट ने एक शब्द को संख्येयवाची माना है[87] तथा अनुदात्तश्रुति के उपादान से तद्विरोधी उदात्त और स्वरित संख्येय (एकपदवाच्य) रूप में गृहीत होते हैं।[88]

अन्वर्थग्रहण पक्ष

अर्थं अनुसरति इति अन्वर्थः। जब शब्द के द्वारा अपने (यौगिक) अर्थ का भी ग्रहण कराया जाता है, तो उसे अन्वर्थ कहते हैं। 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' सूत्र में पारिभाषिक अनुदात्त शब्द का ग्रहण नहीं है अपितु उदात्त के निषेधक (न उदात्तः = अनुदात्त = अविद्यमानोदात्त) अनुदात्त का ग्रहण है। इस प्रकार 'अनुदात्तं पदम्' लक्षण उदात्तत्व का प्रतिषेध करेगा (अर्थात् सम्पर्ण पद उदात्त रहित हो जाता है, ऐसा अर्थ निष्पन्न होगा) तथा तत्पश्चात् 'एकवर्जम्' के द्वारा प्रतिषेध का पर्युदास हो जायेगा। तात्पर्य यह है कि जिसको लक्षणान्तर से स्वर विधान किया गया है उसका पर्युदास होता है (अर्थात् वह उदात्त हो जायेगा) शेष में उदात्तत्व का प्रतिषेध होने से अनुदात्त ही होता है। इसलिए एकश्रुति या अस्वरकता जैसी स्थिति भी नहीं होगी। अतः दोनों लक्षणों का एक पद में सन्निपात होने पर विप्रतिषेध उपपन्न हो जायेगा। विप्रतिषेध में परत्व लक्षण की बलवत्ता होकर शिष्ट अनुदात्त हो जायेगा, यह अभिप्राय है।

कैयट ने स्वरित में विद्यमान उदात्तत्व धर्म से स्वरितविषयक प्रतिषेध भी सिद्ध किया है।[89] तदनुसार तात्पर्यार्थ होगा कि- पद उदात्त रहित और स्वरित रहित होता है, एक उदात्त या स्वरित को छोड़कर। कैयट के स्वरितविषयक प्रतिषेध पक्ष का नागेश ने खण्डन किया है तथा अन्वर्थ के स्थान पर परिभाषा पक्ष को ही युक्त माना है।[90]

नागेश द्वारा अन्वर्थपक्ष खण्डन

नागेश ने 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' में अन्वर्थता से उदात्तविषयक प्रतिषेध को स्वीकार किया है, किन्तु कैयट द्वारा चोदित (स्वरित में उदात्तश्रुति मानकर) स्वरितविषयक प्रतिषेध का खण्डन 'उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य' आदि ज्ञापक के द्वारा किया है।

स्वरित में विद्यमान उदात्त धर्म तथा स्वतन्त्र उदात्त धर्म का भेद रूप में अन्वाख्यान शास्त्र में किया गया है। जिसका ज्ञापक 'उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य' यह लक्षण है (क्योंकि यहाँ दोनों का भेद रूप में ही ग्रहण किया गया है) इसलिए स्वरित में विद्यमान उदात्त से उदात्त विषयक कार्य (विधि या प्रतिषेध) नहीं किये जा सकते। यही नागेश का तात्पर्य है। इसलिए नागेश ने अन्वर्थ पक्ष को खण्डित करके परिभाषापक्ष को ही युक्त माना है।

पदमञ्जरीकार ने भी इस (अनुदात्तं पदमेकवर्जम्) को परिभाषा सूत्र ही माना है तथा 'एकवर्जम्' पद द्वारा इसके परिभाषात्व का निर्णय किया है।[91] तदनुसार स्वतन्त्र या अधिकार सूत्र होने पर 'एकवर्जम्' ग्रहण की

आवश्यकता नहीं थी। परिभाषापक्ष में प्रवृत्तिविषयज्ञानार्थ 'एकवर्जम्' ग्रहण आवश्यक है।[92] इस प्रकार उपर्युक्त सम्पूर्ण पक्षों के विवेचनोपरान्त यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रकृत सूत्र परिभाषा सूत्र है तथा यही सिद्धान्त सम्मत पक्ष है।

'एकवर्जम्' पद विचार

'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' में 'एकवर्जम्' पद के विषय में टीकाकारों ने प्रभूत चिन्तन किया है। वार्तिककार ने 'एकवर्जम्' पद को सन्देहजनक कहा है, क्योंकि यही ज्ञात नहीं हो पाता है कि किस एक का वर्जन अभिप्रेत है। यद्यपि यहाँ परनित्यान्तरङ्ग आदि के द्वारा सिद्धि की जा सकती है, किन्तु प्रदीपकार का कहना है कि परनित्यान्तरङ्ग न्याय सर्वत्र अभिमत नहीं है।[93] यदि यहाँ भी इसकी प्रवृत्ति स्वीकार करें तो गोपायति, ऋतीयते, औपगवत्वम् आदि में इष्ट सिद्धि नहीं हो पायेगी। कैयट ने इसका पाक्षिक समाधान अनवकाश स्वर के रूप में किया है, अर्थात् अनवकाश स्वर का वर्जन होता है।

अनवकाश स्वर के वर्जन में दोष

यदि यह कहा जाये कि अवकाश स्वर को छोड़कर शिष्ट को अनुदात्त हो जाता है, तो भी उचित नहीं है, क्योंकि प्रकृतिस्वर और प्रत्ययस्वर के सावकाश होने पर उभय-प्राप्ति स्थल में (दोनों के सावकाश युक्त होने के कारण) युगपत्स्वर (प्रकृतिस्वर, प्रत्ययस्वर) की प्राप्ति होने लगती है। जैसे- प्रकृति स्वर को वहाँ अवकाश है, जहाँ अनुदात्त प्रत्यय हैं- पचति, पठति आदि। प्रत्यय स्वर को वहाँ अवकाश है, जहाँ अनुदात्त प्रकृति होती है- समत्वम्, सिमत्वम् आदि। किन्तु 'कर्त्तव्यम्', 'तैत्तिरीयः' आदि उदाहरणों में (प्रकृति और प्रत्यय के पूर्वोक्त उदाहरणों में सावकाश होने पर) दोनों (प्रकृति और प्रत्यय) को उदात्तत्व की प्राप्ति होने लगती है। इसलिए प्रदीपकार का मानना है कि अनवकाश के द्वारा सर्वत्र व्यवस्था उपपन्न नहीं हो सकती।[94]

इष्टार्थक परशब्द द्वारा समाधान

भाष्यकार का कहना है कि 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्'[95] के द्वारा 'कर्त्तव्यम्', 'तैत्तिरीयः' आदि में विप्रतिषेध से प्रत्ययस्वर सिद्ध हो जायेगा। यद्यपि यहाँ परकार्य प्रत्यय स्वर नहीं, अपितु प्रकृति स्वर है तथापि 'पर' शब्द को इष्टवाची मानकर प्रत्ययस्वर सिद्ध हो जाता है। तात्पर्य यह है कि 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्'[96] के द्वारा विप्रतिषेध की स्थिति में परशास्त्र विहित कार्य की प्रवृत्ति होती है। परशास्त्र (धातोः) विहित कार्य यहाँ प्रकृतिस्वर है, न कि (आद्युदात्तश्च से विहित) प्रत्ययस्वर।

इसका समाधान भाष्यकार ने सूत्रपठित 'परं' पद का अर्थ उत्तरवर्ती (=बादवाला) न मानकर इष्टवाची मानकर किया है। 'इष्टवाची परशब्दः। विप्रतिषेधे परं यदिष्टं तद् भवतीति।'[97] इसलिए कर्त्तव्यम् आदि में प्रत्ययस्वर के इष्ट होने से उसकी प्रवृत्ति हो जाती है। इसी को पूर्वविप्रतिषेध भी कहते हैं। इस प्रकार कर्त्तव्यम् आदि में प्रत्ययस्वर प्रकृतिस्वर से बलवान हो जाता है।

पूर्वविप्रतिषेध से प्रत्ययस्वर की बलवत्ता में काम्यादि में दोष

यदि पूर्वविप्रतिषेध से प्रत्ययस्वर की बलवत्ता स्वीकार की जाये तो पुत्रकाम्यति, गोपायति, ऋतीयते आदि उदाहरणों में धातुस्वर को बाधकर काम्य आदि प्रत्ययों में आद्युदात्तत्व प्राप्त होने लगेगा। इसके समाधान के लिए 'काम्य' आदि प्रत्ययों में चित्करण आसञ्जन करना पड़ेगा। कैयट का मानना है कि सिद्धान्त रूप में काम्य में चित्करण का प्रत्याख्यान किया गया है तथा 'आय' और 'इयङ्' में भी अपूर्व चित्त्व करना पड़ेगा।[98] इस प्रकार उभयविध दोष होता है। यदि चित्त्व नहीं करते हैं तो पूर्वविप्रतिषेध से धातुस्वर का बाध करके प्रत्ययाद्युदात्तत्व होने लगेगा, जो कि इष्ट नहीं है।

काम्यादिगत दोष का समाधान

भाष्यकार ने इसका समाधान- 'प्रकृति स्वरोऽत्र बाधको भविष्येति'[99] के माध्यम से किया है। कैयट का कहना है कि यहाँ सतिशिष्ट होने से प्रत्यय स्वर की अपेक्षा धातुस्वर की ही बलवत्ता होगी[100], इसलिए प्रत्याख्यायित चित्करण की आवश्यकता नहीं है। नागेश ने भी सति शिष्टरूप में ही समाधान माना है। तदनुसार प्रत्ययत्वप्रयुक्तस्वर के प्रत्ययसन्नियोगशिष्ट होने से धातुत्वप्रयुक्तस्वर सति शिष्ट हो जाता है।[101] पश्चात् आने वाले भिन्न-भिन्न स्वरों में बाद में होने वाला स्वर ही शिष्ट कहा जाता है एवं उसी की बलवत्ता होती है, यही इसका तात्पर्य है।

सतिशिष्टस्वरबलीयस्त्व के लाभ

भाष्यकार ने काम्य, आयादि के चित्करण का निषेध करते हुए प्रकृतिस्वर की बलवत्ता का व्याख्यान किया है। इस पर पूर्वपक्षी का आक्षेप है कि 'कर्त्तव्यम्' आदि में भी प्रकृतिस्वर ही होना चाहिए तथा 'तैत्तिरीयः' आदि में भी फिट्स्वर को षाष्ठ[102] मानकर प्रकृति स्वर होना चाहिए।

यहाँ यह शंका हो सकती है कि 'तैत्तिरीयः' में प्रकृतिस्वर फिट्सूत्र से विहित है तो उसका अष्टाध्यायी पाठकृत् प्रत्ययस्वर की अपेक्षा से परत्व कैसे होगा? इसका समाधान नागेश ने फिट्सूत्र को पाणिनिकृत मानते हुए उसको षष्ठाध्याय में पठित मानकर (परत्व होने से) दिया है। एतदतिरिक्त यदि पाणिनि की अपेक्षा आधुनिककर्तृक माने तो भी उन (फिट्सूत्रों) का परत्व सिद्ध है।[103] इस प्रकार अनेक दोषों के समाधान के लिए सति शिष्टस्वरबलीयस्त्व परिभाषा का आश्रयण आवश्यक है।

सतिशिष्टपरिभाषा के द्वारा पश्चाद्वर्ती शिष्ट स्वर ही बलवान् होता है। अतः कर्तव्यम् आदि में प्रकृतिस्वर को बाधकर पश्चात् होने वाला शिष्टस्वर (प्रत्यय स्वर) बलवान हो जाता है। 'गोपायति' इत्यादि में भी सतिशिष्टत्व नियम से धातुस्वर ही सतिशिष्ट होता है, इसलिए उसकी बलवत्ता होने से प्रत्ययस्वर का अभाव सिद्ध हो जाता है। नागेश ने भी

इस परिभाषा की व्यापकता को स्वीकार करते हुए इसको आदरपूर्ण स्थान दिया है।[104]

सतिशिष्टस्वरबलीयस्त्व के प्रयोजन

सतिशिष्टपरिभाषा का आश्रयण (एक पद में ही) अनेक प्रत्ययार्थ तथा अनेक समासार्थ आवश्यक है। अनेकप्रत्ययार्थ के उदाहरण जैसे- औपगवः। यहाँ प्रकृतिस्वर को अण्स्वर बाध देता है। औपगवत्वम् = यहाँ त्वस्वर अण्स्वर को बाध देता है। 'औपगवत्वकम्' यहाँ त्वस्वर को 'क' स्वर बाध देता है। इस प्रकार 'औपगवत्वकम्' में 'अण्' एवं 'त्व' का स्वर प्रवृत्त न होकर सतिशिष्ट परिभाषा से 'क' का ही स्वर प्रवृत्त होता है। अन्यथा 'अण्', 'त्व' एवं 'क' को प्रत्ययाद्युदात्तत्व होकर अनिष्टसिद्धि होने लग जाती है।

प्रदीपकार का मानना है कि 'औपगवत्वकम्' आदि में विप्रतिषेध से परत्व व्यवस्था भी सम्भव नहीं हो सकती क्योंकि यहाँ स्वर का विधान एक ही सूत्र से किया जा रहा है।[105] एवं विप्रतिषेध वहाँ उपपन्न होता है जब भिन्न-भिन्न दो योगों के द्वारा (एक शब्द में ही) कार्य की प्राप्ति होती है।

अनेकसमासार्थ के उदाहरण, जैसे- राजपुरुषः, राजपुरुषपुत्रः, राजपुरुषपुत्रपुरुषः इत्यादि में भी पूर्ववत् सतिशिष्टत्व से उत्तरवर्ती अन्तिम पद को अन्तोदात्त हो जाता है। इस प्रकार सतिशिष्टत्व की व्यवस्था से इष्ट उपपन्न हो जाता है।

सतिशिष्टत्व परिभाषा के दोष

यद्यपि सतिशिष्ट परिभाषा का क्षेत्र व्यापक है तथापि इसके कुछ दोष भी है, जिनका विवेचन निम्न है-

प्रथम दोष

सुनुतः, चिनुतः आदि पदों में विकरणस्वर (स्यादिस्वर) सतिशिष्ट होने से सार्वधातुकस्वर का बाधक होने लगता है। प्रदीपकार का कहना है कि सार्वधातुक के परे रहते स्यादि का विधान होने से स्यादिस्वर सतिशिष्ट है।[106] जबकि इष्ट यह है कि विकरणस्वर (स्यादिस्वर = 'श्नु' आदि) सार्वधातुकस्वर का बाध न करें।

ज्ञापक द्वारा सतिशिष्टत्व प्रयुक्त दोष का समाधान

सतिशिष्टस्वर के कारण 'सुनुतः', 'चिनुतः' आदि में प्राप्त होने वाले स्यादिस्वर के समाधान के लिये भाष्यकार ने ज्ञापक का आश्रयण किया है। उनका कहना है कि तासि से उत्तरवर्ती विद्यमान लसार्वधातुक को (तासि के सति शिष्ट होने से) स्वतः ही अनुदात्त हो जायेगा; पुनः अनुदात्त विधान[107] इस बात का ज्ञापक है कि सतिशिष्ट होने पर भी विकरणस्वर लसार्वधातुकस्वर का बाधक नहीं होता, अर्थात् लसार्वधातुकस्वर ही सिद्ध रहता है।

कैयट तथा नागेश का ज्ञापकविषयक विमर्श

कैयट ने ज्ञापक को प्रक्रियागत दृष्टि से मानते हुए द्विविध व्याख्यान किया है। उनका कहना है कि यदि परत्व से लादेश कर लेने पर तत्पश्चात् तासि होता है तो ज्ञापक बन जायेगा।[108] (अर्थात् इस पक्ष में 'सुनुतः' की सिद्धि में 'ल' (लट्) के स्थान पर पहले 'तस्' होता है तथा तत्पश्चात् 'स्यतासी लृलुटोः'[109] से तासि विकरण होता है। इस प्रकार तासि के सतिशिष्ट होने से ही सार्वधातुक को अनुदात्त सिद्ध ही था, पुनः विधान व्यर्थ होकर ज्ञापकार्थ सिद्ध हो जाता है। यह अभिप्राय है।

एतद्विपरित यदि लावस्था में ही तासि कर लिया जाता है तथा तत्पश्चात् सार्वधातुक 'तस्' उत्पन्न होता है तो ज्ञापक सिद्ध नहीं होगा।[110] क्योंकि इस अवस्था में सार्वधातुक (तस्) पश्चात् होता है तथा 'तासि' पहले (लट् के परे रहते ही) हो जाता है। अतः लसार्वधातुकस्वर के सतिशिष्ट होने से उस (उदात्त) के बाधन के लिए अनुदात्तविधान सार्थक हो जाता है। (बिना वैयर्थ्य के ज्ञापक नहीं बनता) नागेश का कहना है कि द्वितीय पक्ष में यह अर्थ वाचनिक माना जायेगा।[111] अर्थात् 'सतिशिष्टोऽपि विकरणस्वरो लसार्वधातुकस्वरं न बाधते' ऐसी वाचनिकी परिभाषा करनी पड़ेगी।

सतिशिष्टत्व में द्वितीय दोष तथा उसका समाधान

'अतिम्रः' उदाहरण में सतिशिष्टत्व होने से नञ् की अपेक्षा विभक्तिस्वर की प्राप्ति होने लगती है। (तिसृभ्यो जसः[112] आदि से विभक्ति का उदात्तत्व प्राप्त होता है) अर्थात् विभक्ति स्वर को तिम्रस्तिष्ठन्ति में अवकाश है तथा नञ्स्वर 'अब्राह्मणः', 'अवृषलः' आदि में सावकाश है। 'अतिम्रः' में उभय (विभक्तिस्वर एवं नञ्स्वर) प्राप्ति होने पर सतिशिष्टत्व से विभक्तिस्वर प्राप्ति रूप दोष होने लगता है।

इस दोष के समाधान के लिए 'विभक्तिस्वरानञ्स्वरो बलीयान् भवति' इस वाचनिकी परिभाषा का आश्रयण करना पड़ता है। इसके द्वारा विभक्तिस्वर के सतिशिष्ट होने पर भी नञ्स्वर की बलवत्ता सिद्ध होकर 'अतिम्रः' आदि में (तत्पुरुषे तुल्यार्थ.)[113] सूत्र से नञ् को प्रकृतिस्वर हो जाता है। इसलिए नागेश का कहना है कि सतिशिष्ट स्वरबलीयस्त्व की प्रवृत्ति विकरणस्वर एवं नञ्स्वर को छोड़कर होती है।[114]

प्रकारान्तर से शब्दपरविप्रतिषेध द्वारा 'एकवर्जम्' का समाधान

अनेक अचों को उदात्तत्व की प्राप्ति होने पर किस एक अच् का वर्जन करके अवशिष्ट को अनुदात्त किया जाये, इसके निर्णय के लिए भाष्यकार एवं तट्टीकाकारों ने सतिशिष्टस्वरबलीयस्त्व परिभाषा का व्यापक क्षेत्र होने से आदर किया है। उपर्युक्त विवेचन में तत्परिभाषा के गुण-दोषों पर विचार किया गया था। उसकी आंशिक न्यूनता को ध्यान में रखते हुए भाष्यकार ने 'एकवर्जम्' पद के समाधान के लिए प्रकारान्तर से शब्दपरविप्रतिषेध का पक्ष भी स्थापित किया है। तदनुसार वर्जन के निर्णय के लिए विप्रतिषेध का होना आवश्यक है।

'विप्रतिषेधे परं कार्यम्'[115] सूत्र से शास्त्रपरविप्रतिषेध करने पर सम्पूर्ण इष्ट संग्रहीत नहीं होता है, इसलिए शब्दपरविप्रतिषेध का आश्रयण किया जाता है। 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' के अनुसार विप्रतिषेध वहीं

उपपन्न होता है, जहाँ दो भिन्न-भिन्न सूत्रों के द्वारा तुल्यबलविरोध प्रदर्शित हो। इस विप्रतिषेध को शास्त्रपरविप्रतिषेध कहते हैं, क्योंकि इसमें शास्त्रो (= सूत्रों) में तुल्यबल विरोध देखा जाता है। एतद्विपरीत 'औपगवत्वम्', 'औपगवत्वकम्' आदि उदाहरणों के प्रसङ्ग में स्थिति इसके विपरीत है, क्योंकि यहाँ भिन्न-भिन्न प्रत्ययों में उदात्तत्व का विधान एक ही सूत्र (आद्युदात्तश्च)[116] के द्वारा किया जा रहा है, इसीलिए परनित्यादि व्यवस्था एवं विप्रतिषेध यहाँ सम्भव नहीं हो पाता है।

भाष्यकार ने इसके समाधान के लिए शब्दपरविप्रतिषेध का आश्रयण किया है। शब्दपरविप्रतिषेध में शास्त्र (=सूत्र) की दृष्टि से विप्रतिषेध न होकर कार्य की दृष्टि से विप्रतिषेध होता है। अतः एक सूत्र से युगपत् विहित दो कार्यों में भी पूर्वत्व परत्व उपपन्न होकर विप्रतिषेध सिद्ध हो जाता है। जैसे- औपगवत्वम्, औपगवत्वकम्।

यहाँ 'औपगवत्वम्' में (आद्युदात्तश्च से प्राप्त) प्रत्ययाद्युदात्तत्व 'अण्' एवं 'त्व' को प्राप्त होता है। शब्दपरविप्रतिषेध के द्वारा 'त्व' को आद्युदात्तत्व हो जाता है, क्योंकि कार्य की दृष्टि से पहले आद्युदात्तत्व 'अण्' को प्राप्त होता है तथा तत्पश्चात् 'त्व' को होता है। इस प्रकार दोनों कार्यों में विप्रतिषेध होने पर शब्दपरविप्रतिषेध से 'त्व' को कार्य हो जाता है। इसी प्रकार 'औपगवत्वकम्' आदि में भी 'क' को प्रत्ययाद्युदात्तत्व सिद्ध हो जाता है। इसी आशय को भाष्यकार ने भी कहा है- 'शब्दपरविप्रतिषेधो नाम स भवति यत्रोभयोर्युगपत्प्रसङ्गः।'[117]

कैयट का भी कहना है कि 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्'[118] सूत्र में केवल इतना मात्र ही अर्थ अभिप्रेत नहीं है कि दो लक्षणों (=सूत्रों) में विप्रतिषेध होने पर, पर सूत्र विहित कार्य होता है, अपितु एक ही लक्षण (=सूत्र) से विहित दो कार्यों में भी विप्रतिषेध होने पर परशब्दविषयत्व होने से पर (बाद) वाला कार्य होता है।[119] ऐसा अर्थ भी आश्रयण किया जाता है।

कैयट द्वारा प्रतिपादित शब्दपरविप्रतिषेध के विषय में नागेश का कहना है कि कैयट ने यह अर्थ 'विप्रतिषेध परं कार्यम्' सूत्र के शास्त्रपरविप्रतिषेध मात्र अर्थ के नियम का अभाव होने रूप व्याख्यान से निकाला है।[120] अर्थात् शास्त्रों (सूत्रों) के विप्रतिषेध होने पर ही पर सूत्र विहित कार्य होता है, सूत्र का इतना ही अर्थ होगा ऐसा कोई हेतु नहीं है। यह अभिप्राय है। एतदतिरिक्त नागेश का मानना है कि शब्दपरविप्रतिषेध भी शास्त्र से ही सिद्ध है।[121] तदनुसार, जैसे- कार्य का स्वतः परत्व असंभव होने के कारण कारणभूतलक्षण द्वारा परत्व आश्रयण किया जाता है इसी प्रकार विषयभूतशब्द द्वारा भी परत्व उपचरित होता है।

नागेश ने शब्दपरविप्रतिषेध विषयक भाष्यकार द्वारा प्रत्याख्यान पक्ष को भी उठाया है। तदनुसार 'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ'[122] सूत्र में भाष्यकार ने इस पक्ष को दूषित माना है।[123]

सूत्रगत पदविषयक विमर्श

काशिकाकार ने 'पद' शब्द को परिमाणार्थ माना है।[124] हरदत्त का भी कहना है पदाधिकार में पुनः पद ग्रहण से 'पद' से यहाँ गौण पद से अभिप्राय है, जिसकी भविष्य में पद संज्ञा हो जायेगी।[125] अन्यथा गौण पद न मानने पर 'सुप्तिङन्तं पदम्'[126] से पदसंज्ञा होगी, अर्थात् जब तक पदसंज्ञा नहीं होगी, तब तक शेषनिघात भी नहीं होगा।

ऐसी स्थिति में 'कुवल्याः विकारः कौवलम्' में 'अनुदात्तादेश्च'[127] से 'अञ्' की प्राप्ति नहीं होगी, क्योंकि कुवलशब्द ग्रामादित्वेन[128] आद्युदात्त है। तत्पश्चात् गौरादिङीष् करने पर भी पदव्यपदेश का अभाव होने से आद्युदात्त ही रहता है। अतः अनुदात्तादि मानकर होने वाले 'अञ्' की प्रवृत्ति नहीं हो पायेगी। यह दोष उपस्थित होता है।

परिमाणार्थ पदग्रहण मानने पर पदव्यपदेश होने से पहले ही स्वरविधान के समय ही शिष्ट को अनुदात्त विधान होने से 'कुवली' शब्द के अनुदात्तादि होने से 'कुवल्याः विकारः कौवलम्' इत्यादि में अनुदात्तादिलक्षण अञ् सिद्ध हो जाता है। एतदतिरिक्त 'गर्भिणी' शब्द के अनुदात्तादिलक्षण अञ् के बाधनार्थ भिक्षादिगण में पाठ रूप ज्ञापक से भी 'पद' शब्द परिमाणार्थ ही सिद्ध होता है।

ज्ञापक की उपपन्नता निम्न रूप में रहेगी- 'गर्भिणी' शब्द में 'गर्भोऽस्या अस्तीति' इस अर्थ में मत्वर्थीय 'इनि' प्रत्यय होकर 'ङीप्' होता है। 'गर्भ' शब्द ग्रामादित्वेन आद्युदात्त है। इसमें यदि इनि प्रत्यय को उदात्त विधान के समय ही शिष्ट को अनुदात्त हो जाता है, तो गर्भिणी शब्द के अनुदात्तादि होने से 'अनुदात्तादेश्च'[129] से प्राप्त 'अञ्' के बाधनार्थ उसका भिक्षादिगण में पाठ उचित है। एतद्विपरीत यदि पदसंज्ञा विहित होने के बाद शिष्ट का अनुदात्त होता है, तो 'गर्भिणी' शब्द आद्युदात्त होता है, अतः अञ् की प्राप्ति न होने से उसका भिक्षादिगण में पाठ व्यर्थ है। इससे ज्ञापित होता है कि 'पद' शब्दपरिमाणार्थ ही ग्रहण किया गया है।

निष्कर्ष

यह सूत्र स्वरविधिविषयक परिभाषा सूत्र है। सूत्रार्थ पर विचार करते हुए भाष्यकार ने सूत्रगत 'पद' शब्द की दृष्टि से दो पक्ष दर्शाये हैं- व्यक्तिपक्ष एवं जातिपक्ष।

जातिपक्ष मानने पर सूत्र का अर्थ वाक्यपरक होता है तथा व्यक्तिपक्ष मानने पर पदपरक। सिद्धान्ततः व्यक्तिपक्ष को ही स्वीकार किया गया है, क्योंकि इस सूत्र का मुख्य कार्य पदगत स्वर का विधान करना है। 'पद' शब्द भी परिमाणार्थ ही स्वीकार किया गया है, अतः उदात्तविधान समकाल में ही शिष्ट को अनुदात्त हो जाता है।

प्रकृत सूत्र का प्रयोजन यह है कि जहाँ आगमादि को पृथक्-पृथक् स्वर प्राप्त हो रहा हो, वहाँ सबकी निवृत्ति होकर एक अच् (उदात्त स्वरित) को छोड़कर शेष अच् अनुदात्त हो जायें। अन्यथा प्रकृति-प्रत्यय-आगमादि से भिन्न-भिन्न स्वर की प्राप्ति होने लग जाती। इस प्रकार पर्यायस्वर एवं युगपत्स्वर की प्रसक्ति का निषेध करना ही इसका प्रयोजन हो जाता है।

भाष्यकार ने ज्ञापकादि के द्वारा भी इन प्रयोजनों के सिद्ध होने से सूत्र का प्रत्याख्यान किया है, किन्तु नागेश ने उदात्तश्रुतिविषयक ज्ञापक से

स्वरित के समावेश को असंगत मानकर सूत्रप्रणयन पक्ष स्वीकार किया है। सम्भवतः इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए भाष्यकार ने भी सूत्र के आरम्भ पक्ष पर भी विचार किया है।

सूत्रारम्भ पक्ष पर विचार करते हुए भाष्यकार तथा तट्टीककारों ने प्रस्तुत सूत्र को विधिसूत्र, अधिकारसूत्र, नियमसूत्र एवं परिभाषासूत्र आदि मानकर विभिन्न पक्षों का गुण-दोष की दृष्टि से प्रभूत विवेचन किया है। सिद्धान्ततः परिभाषा सूत्र के रूप में इसकी स्थापना की गयी है। वस्तुतः यह स्वरविधिलिङ्गा परिभाषा सूत्र है, इसलिये 'कार्यकालं संज्ञापरिभाषाम्' पक्ष को मानकर स्वरविधिविषयक सूत्रों में इसकी उपस्थिति होती है।

प्रकृत सूत्र एक अच् को छोड़कर शेष का अनुदात्त विधान करता है। वार्तिककार ने 'एकवर्जम्' पद को सन्देहजनक कहा है, क्योंकि यह ही ज्ञात नहीं हो पाता है कि किस एक का वर्जन अभिप्रेत है। इसलिए भाष्यकार एवं टीकाकारों ने 'एकवर्जम्' पद के विषय में भी विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इस सन्दर्भ में 'एकवर्जम्' के निर्धारण के लिए परनित्यान्तरङ्ग व्यवस्था, अनवकाशता, सतिशिष्टत्व, पूर्वविप्रतिषेध एवं शब्दपरविप्रतिषेध आदि पक्षों का विवेचन किया गया है। सिद्धान्ततः सतिशिष्टस्वरबलीयस्त्व एवं शब्दपरविप्रतिषेध को स्वीकार किया गया है।

संदर्भ

1. यत्रान्यः स्वर उदात्तः स्वरितो वा विधीयते, तत्रानुदात्तं पदमेकं वर्जयित्वा भवति इत्येतदुपस्थितं द्रष्टव्यम्। का. 6.1.158
2. परिभाषेयम् स्वरविधिविषया। का. 6.1.158
3. 'पदम्' इति जातावेकवचनं मन्यते। प्रदीप, पृ. 143/2
4. वाक्ये पदमेकं वर्जयित्वा पदान्तराण्यनुदात्तानि भवन्ति। प्रदीप, पृ. 144/1
5. अनुदात्तशब्दं च लौकिकं मन्यते। प्रदीप, पृ. 143/2
6. लोका हि उदात्तं पदम्-अनुदात्तं पदम् इति व्यपदिशन्ति। प्रदीप, पृ. 143/2
7. प्रत्यासत्ति न्याय का तात्पर्य है कि विधि या निषेध अपने समीपवर्ती को ही हुआ करता है। दूरस्थ या अन्य उपलक्षणों द्वारा प्राप्त का नहीं।
8. 'एकवर्जम्' इत्यत्रैकशब्देन प्रत्यासत्त्या पदमेवोच्यते। प्रदीप, पृ. 143/2
9. 'पदम्' इति व्यक्तिनिर्देशः विवक्षितं चैकत्वम्। पदमञ्जरी, पृ. 256
10. पदे येषामुदात्तप्रसङ्गस्तेऽनुदात्ता भवन्ति एकमचं वर्जयित्वा। महाभाष्य, पृ. 143/2
11. 'कृत्रिमाकृत्रिमयोः कृत्रिमे कार्यसंप्रत्ययः' इस परिभाषा के अनुसार कृत्रिम तथा अकृत्रिम में कार्य की प्राप्ति होने पर व्याकरणशास्त्र में कृत्रिम में कार्य किया जाता है।
12. अनुदात्तशब्दश्च 'नीचैरनुदात्तः' (अष्टा. 1.2.30) इत्यज्विशेषे पारिभाषिक इति तस्यैव ग्रहणं युक्तम्। पदमञ्जरी, पृ. 256
13. उदात्तग्रहणमुपलक्षणं स्वरितस्यापि। उद्योतः, पृ. 144/1
14. परे तु-एकत्वविवक्षाकथनस्य नोपयोगः। उद्योतः, पृ. 144/1
15. यावति पदत्व समाप्तं तावत्यस्य प्रवृत्तिरिति। उद्योतः, पृ. 144/1
16. पदशब्दोऽपि लक्षणया तत्स्थेष्वक्षु वर्तते, तत्राचां पदस्थत्वाव्यभिचारादेकत्वविवक्षार्थमेव पदग्रहणम्। पदमञ्जरी, पृ. 256
17. महाभाष्य, पृ. 144/2
18. महाभाष्य, पृ. 144/2
19. त्रयो बिन्दव उच्यन्ते। प्रदीप, पृ. 144/2
20. अवयवावयविनोरभेदोपचारादनुपत्तिरेव मतुब्लोपः। प्रदीप, पृ. 144/2
21. तात्पर्य यह है कि 'आ कडारादेका संज्ञा' सूत्र से अन्य संज्ञाओं का समावेश नहीं होता है। अर्थात् तत्सूत्रभाष्य में अर्थवान् शब्दमात्र की प्रातिपदिकसंज्ञा का विधान करके अन्य संज्ञायें विधान की गयी हैं। तत्पश्चात् उस प्रातिपदिकसंज्ञा की गुणवचनसंज्ञा तथा तत्पश्चात् समासादि संज्ञायें विहित हैं, यह क्रम है। गुणवचनसंज्ञा का प्रातिपदिकसंज्ञा के साथ समावेश हो जाता है (क्योंकि प्रातिपदिकसंज्ञा रहित स्थल कहीं पर भी नहीं है) तत्पश्चात् पर (बाद) वाली संज्ञायें गुणवचनसंज्ञा की बाधिका होती हैं इसलिए गुणवचन शब्द से शास्त्र में जातिसंज्ञा, अव्यय, कृदन्त, तद्धितान्त समस्तसर्वनामसंख्या शब्द के अतिरिक्त शब्दों का ग्रहण होता है। अतः अनुदात्त शब्द में गुणवचनत्वाभाव होने से 'गुणवचनेभ्यो लुक्' से मतुब्लोप नहीं होता है, यह अभिप्राय है।
22. सौत्रोऽत्र मतुब्लोप इति भाष्याशयमन्ये। उद्योतः, पृ. 144/2
23. अष्टा. 5.2.127
24. अष्टा. 7.1.98
25. अनश्शब्दोऽसुन्प्रत्ययान्तः आद्युदात्तः। प्रदीप, पृ. 145/1
26. अष्टा. 6.2.138
27. अत्रोपपदस्वराम्स्वरयोः श्रवणप्रसङ्गो दोषः। उद्योतः, पृ. 145/1
28. 'आगमस्य' इत्यादि। उपलक्षणमेतत्। पदमञ्जरी, पृ. 258
29. न चैतावदेव प्रयोजनम्। येषामपि केनापि स्वरित उदात्त वा न विधीयते, यथाऽनेकाक्षु प्रत्ययेषु धातुषु वाऽऽद्यन्तव्यतिरिक्तानामचां तेषामप्यनुदात्तनियमस्यैतदधीनत्वात्। पदमञ्जरी, पृ. 258
30. अष्टा. 6.2.51
31. अष्टा. 6.1.202
32. स्वरितेऽप्युदात्तसद्भावादुदात्तस्वरितयोरपि पर्याययौगपद्यनिरासः सिद्धः इत्यर्थः। प्रदीप, पृ. 145/2
33. उदात्तश्रुतिमात्रविषयस्य ज्ञापकस्याश्रयणादेवं लभ्यते। प्रदीप, पृ. 145/2
34. (क) यत्तु-उदात्तश्रुत्या स्वरितस्याग्रहणमिह शास्त्रे, तद्युक्तम्। मुख्यस्योदात्तस्याचः सञ्ज्ञिनो ग्रहणस्य युक्तत्वात्। प्रदीप, पृ. 145/2 (ख) अनेन स्वरितविषयत्वं ज्ञापकस्यासङ्गतमित्युक्तम्। उद्योतः, पृ. 145/2
35. अष्टा. 8.2.4

36. अष्टा. 4.2.108
37. अष्टा. 8.4.65
38. स्वरितेऽप्युदात्तसद्भावादुदात्तस्वरितयोरपि पर्याययौगपद्यनिरासः सिद्धः इत्यर्थः। प्रदीप, पृ. 145/2
39. अनेन स्वरितविषयत्वं ज्ञापकस्यासङ्गतमित्युक्तम्। उद्योत, पृ. 145/2
40. तत्र येषामचामुदात्तत्वं स्वरितत्वं वा साक्षान्न विधीयते तेऽस्यावकाश इति येषां शास्त्रेणोदात्तत्वं स्वरितत्वं वा विधीयते तच्चैषां न निवर्तयेत्। प्रदीप, पृ. 146/1
41. येषामचां लक्षणान्तरेणोदात्तः स्वरितो वा न विधीयते, तेष्वप्यनुदात्तस्य पक्षे प्राप्तत्वाद्विधिरनुपपन्नः। पदमञ्जरी, पृ. 257
42. लक्षणान्तरेण येषामुदात्तः स्वरितो वा विहितः, त एकस्मिन् पदे वर्तमाना अनुदात्ता भवन्त्येकमचं वर्जयित्वेत्यर्थः। पदमञ्जरी, पृ. 257
43. अष्टा. 3.1.3
44. अष्टा. 6.2.138
45. अष्टा. 6.2.82
46. अष्टा. 6.2.83
47. अप्राप्तविधाने चरितार्थत्वात् प्राप्तविनिवृत्तौ व्यापाराऽभावः। उद्योतः, पृ. 146/1
48. अष्टा. 8.4.65
49. अष्टा. 8.4.66
50. 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' इति स्वरितत्वं न भवति, 'नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम्' इति पक्षे प्रतिषेधात्। प्रदीप, पृ. 146/1
51. एतदुत्तरमुक्तप्रयोगे स्वरितत्वाभावव्युत्पादनं पाक्षिकं कैयटेन कृतं तत्किमर्थमिति चिन्त्यम्। उद्योतः, पृ. 146/1
52. अष्टा. 6.2.82
53. अष्टा. 6.2.83
54. तत्र येषामचामुदात्त..... न निवर्तयेत्। प्रदीप, पृ. 146/1
55. एकग्रहणं शास्त्रान्तरविहितस्वरकोपलक्षणम्। उद्योतः, पृ. 146/1
56. लक्षणान्तरेण येषामुदात्तः स्वरितो वा विहितः, त एकस्मिन् पदे वर्तमाना अनुदात्ता भवन्त्येकमचं वर्जयित्वेत्यर्थः स्यात्। पदमञ्जरी, पृ. 257
57. कथम् 'औपगवत्वम्' इत्यत्र द्वे प्रत्ययाद्युदात्तत्वे? 'तत्रैकस्यानुदात्तत्वं विधीयमानं कस्य भवतु'? पदमञ्जरी, पृ. 257
58. अप्राप्तविधाने चरितार्थत्वात् प्राप्तनिवृत्तौ व्यापाराऽभावः। उद्योतः, पृ. 146/1
59. यदि 'नोदात्तं पदमेकवर्जम्' इति सूत्रन्यासं कृत्वा उदात्तत्वं प्रतिषिध्येत, न स्याद्दोषः। प्रदीप, पृ. 146/2
60. अत्र न्यासे 'एकं' पदं एकत्वसङ्ख्यावत्परम्। उद्योतः, पृ. 146/2
61. 'तवै चान्तश्च'- इत्यादौ तु युगपद्ग्रहणसामर्थ्यात् समावेशः इति भावः। उद्योतः, पृ. 146/2
62. क्वचित्पाठः 'नानेनोदात्तत्वं क्रियते' इति। प्रदीप, पृ. 146/2
63. यदि 'उदात्तं पदमेकम्' इति सूत्रं कृत्वोदात्तमेकमेव पदे भवतीति नियमायोदात्तत्वं क्रियते तदा न स्याद्दोषः। प्रदीप, पृ. 146/2
64. इदमेवानुदात्तस्य विधायकं लक्षणमिति मत्वा दोषोपन्यासः। प्रदीप, पृ. 146/1
65. एकमचं वर्जयित्वा, परिशिष्टमनुदात्तमेव भवति। पदमञ्जरी, पृ. 257
66. अस्ति हि तत्रानियमप्रसङ्गः, अस्वरस्याच उच्चारणासम्भवात्। पदमञ्जरी, पृ. 257
67. अष्टा. 6.2.138
68. अष्टा. 6.2.82
69. अष्टा. 6.2.83
70. यदि 'उदात्तं पदमेकम्' इति सूत्रं कृत्वोदात्तमेकमेव पदे भवतीति नियमायोदात्तत्वं क्रियते तदा न स्याद्दोषः। प्रदीप, पृ. 146/2
71. महाभाष्य, पृ. 146/2
72. अष्टा. 1.4.2
73. आचार्यदेशीय आह- यदि पुनरिति। प्रदीप, पृ. 147/1
74. अधिकार आश्रयितुमशक्यः, अव्याप्तिप्रसङ्गात्। प्रदीप, पृ. 147/1
75. अष्टा. 3.1.3
76. अष्टा. 4.4.108
77. अष्टा 7.1.75
78. अष्टा. 6.3.77
79. षष्ठेऽपि 'सहस्य सः' इत्यादेरसंग्रहः। उद्योतः, पृ. 147/1
80. जैसे घर की देहली में रखा हुआ दीपक घर के बाहर तथा भीतर दोनों तरफ प्रकाश करता है, उसी प्रकार परिभाषा सूत्र भी अव्याहतरूप से सम्पूर्ण शास्त्र को प्रकाशित करते हैं। परिभाषाओं के सम्बन्ध में भी दो पक्ष है। कार्यकालपक्ष और यथोद्देशपक्ष।
81. महाभाष्य, पृ. 147/1
82. अष्टा. 6.2.82
83. अष्टा. 6.2.83
84. नन्वेवमपि 'एकोदात्तं पदम्' इत्येव परिभाषा कर्त्तव्या। उद्योतः, पृ. 147/2
85. अष्टा. 6.2.82
86. अष्टा. 6.2.83
87. एकशब्दः संख्येयवाची। प्रदीप, पृ. 147/2
88. अनुदात्तश्रुत्युपादानात्तद्विरोधी स्वरित उदात्तश्च संख्येयो गृह्यते। प्रदीप, पृ. 147/2
89. स्वरितेऽप्युदात्तोऽस्तीति तस्यापि प्रतिषेधोऽनेन विधीयते। प्रदीप, पृ. 148/1
90. इदम् 'उदात्तस्वरितयोः'- इति ज्ञापकात्पूर्वोक्तादयुक्तमिति परिभाषापक्ष एव युक्तः। उद्योतः, पृ. 148/1
91. 'एकवर्जम्' इति वचनात् परिभाषात्वनिर्णयः। पदमञ्जरी, पृ. 260
92. परिभाषात्वे तु प्रवृत्तिविषयज्ञानार्थं कर्तव्यमिति। पदमञ्जरी, पृ. 260
93. परिनत्यान्तरङ्गत्वेन सर्वत्र व्यवस्था नाभिमतेति भावः। प्रदीप, पृ. 148/1
94. अनवकाशत्वेन सर्वत्र व्यवस्था नोपपद्यत इति। प्रदीप, पृ. 148/2

95. अष्टा. 1.4.2
96. अष्टा. 1.4.2
97. महाभाष्य, पृ. 148/2
98. काम्यचश्चित्करणं प्रत्याख्यातं तत्कर्तव्यमेव, आयेयङोस्त्वपूर्वं चित्त्वं कर्तव्यमिति-उभयोपादानम्। प्रदीप, पृ. 148/2
99. महाभाष्य, पृ. 148/2
100. (क) धातुस्वर सति शिष्टत्वाद् भविष्यतीति भावः। प्रदीप, पृ. 148/2
(ख) गोपायति आदि में गुप् धातु से आय प्रत्यय होकर तदन्त की पुनः 'सनाद्यन्ता धातवः' से धातुसंज्ञा होने पर प्रत्ययस्वर की अपेक्षा धातुस्वर सतिशिष्ट है, यह अभिप्राय है।
101. प्रत्ययत्वप्रयुक्तस्वरस्य प्रत्ययसन्नियोगशिष्टत्वाद् धातुत्वप्रयुक्तस्वरस्य सति शिष्टत्वमिति भावः। उद्योत, पृ. 148/2
102. फिट्स्वरोऽपि षाष्ठ एवेति तैत्तिरीयेऽपि दोषः। उद्योतः, पृ. 147/1
103. यद्वा फिट्सूत्राणि पाणिन्यपेक्षया आधुनिकर्तृकाणीति परत्वं बोध्यम्। उद्योतः, पृ. 149/1
104. एवं च व्यापकत्वादिदमेवादर्तव्यमिति। प्रदीप, पृ. 149/1
105. एकयोगलक्षणोऽत्र स्वर इति विप्रतिषेधेन व्यवस्थाया असिद्धत्वात्। प्रदीप, पृ. 149/2
106. सार्वधातुके परतः स्यादीनां विधानात् तत्स्वरः सति शिष्टः। प्रदीप, पृ. 149/2
107. तास्यनुदात्तेत्ङिददुपदेशाल्लसार्वधातुकमनुदात्तमह्न्विङोः (अष्टा. 6.1. 186) से तासि से उत्तर लसार्वधातुक को अनुदात्त विधान किया गया है।
108. परत्वाल्लादेशेषु कृतेषु तासिः - इति प्रक्रियाश्रयेण ज्ञापकमुच्यते। प्रदीप, पृ. 149/2
109. अष्टा. 3.1.33
110. लावस्थायां तु तासौ कृते सार्वधातुकोत्पत्तौ न ज्ञापकं भवति। प्रदीप, पृ. 149/2
111. अत्र पक्षेऽयमर्थो वाचनिक एवेति बोध्यम्। उद्योत, पृ. 149/2
112. अष्टा. 6.1.160
113. अष्टा. 6.2.2
114. सति शिष्टस्वरबलीयस्त्वमन्यत्र विकरणस्वरान्नञ्स्वराच्चेति फलितम्। उद्योत, पृ. 150/2
115. अष्टा. 1.4.2
116. अष्टा. 3.1.3
117. महाभाष्य, पृ. 150/1
118. अष्टा 1.4.2
119. 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' इत्यत्र नायं नियमः- लक्षणयोर्विप्रतिषेधे परं भवतीति। किं तर्हि-एक-लक्षणविहितयोरपि कार्ययोर्विप्रतिषेधे परशब्दविषयत्वात्परं कार्यं भवति इत्येषोऽप्यर्थ आश्रीयते। प्रदीप, पृ. 150/1
120. कैय्यटस्तु सूत्रे शास्त्रयोर्विप्रतिषेध एव ग्राह्य इति नियमाभावादित्यर्थमाह। उद्योतः, पृ. 150/1
121. ननु शब्दपरविप्रतिषेधः कथं शास्त्राल्लभ्यत इत्यत आह-परशब्दविषयत्वादिति। उद्योतः, पृ. 150/1
122. अष्टा. 1.1.56
123. यद्यपि 'अचः परस्मिन्' इत्यादौ शब्दपरविप्रतिषेधो भाष्ये दूषित .....। उद्योतः, पृ. 150/1
124. परिमाणार्थं चेदं पदग्रहणम्। काशिका 6.1.158
125. पदमत्र गौणमभिप्रेतम्, यस्य पदसंज्ञा भविष्यति न मुख्यम्; पदाधिकारे पुनः पदग्रहणात्। पदमञ्जरी, पृ. 259
126. अष्टा. 1.4.14
127. अष्टा. 4.3.158
128. अष्टा.
129. अष्टा. 4.3.138